तिथि–10 मार्च 2022
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२२
युगाब्द-५१२२, अंक-१४८, वर्ष-१४
फाल्गुन विक्रमी २०७८ (मार्च 2022)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥–यजुः ३२। ११

व्याख्यान– [(परीत्य भूतानि)] सब भूत आकाश और प्रकृति से लेके पृथिवीपर्यन्त सब संसार में वह परमेश्वर व्याप्त होके पूर्ण भर रहा है। [(परीत्य लोकान् ..... दिशश्च)] तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा ऊपर नीचे अर्थात् एक कण भी उनके विना खाली नहीं। (प्रथमजाम्) प्रथमोत्पन्न जीव=सब संसार को ही समझना। सो जीव आदि अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण विद्या श्रद्धा भक्ति से (ऋतस्य) यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को (उपस्थाय) यथावत् जानके उपस्थित=निकट प्राप्त (अभिसंविवेश) अभिमुख होके उसमें प्रविष्ट अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके सब दु:खों से छूटके सदैव उसी परमानन्द में रहता है ।।१०।।

सम्पादकीय

ऐसी कैसी मेडिकल शिक्षा ...?

संसार की सबसे प्राचीन चिकित्सा विधि का जनक हमारा देश रहा है, विश्वभर में आज जितनी चिकित्सा पद्धतियाँ उपलब्ध हैं, आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति उन सभी में प्राचीनतम है, किन्तु दुर्भाग्य है कि सम्पूर्ण मानवजाति स्वाधीनता के 75 वर्ष उपरान्त भी हम अपनी और सम्पूर्ण मानव जाति के सर्व प्रकार से हितैषी इस चिकित्सा पद्धति को आधुनिक काल के सम्मुख दृढ़ता पूर्वक न स्थापित कर पाए हैं, न ही प्रतिस्पार्धा में टिका पाए हैं। आज हमारे देश में भी यदि आधिकारिक रूप से सबल समर्थ और प्रतिष्ठित कोई चिकित्सा पद्धति है तो वह यूरोपियन ऐलोपैथिक चिकित्सा पैथी है। किन्तु दुर्भाग्य कि इस चिकित्सा पद्धति की शिक्षा की स्थिति भी हमारे देश में कैसी है? इसकी कुछ स्थिति वर्त्तमान में तब हमारे सामने उपस्थित हुई जब रूस ने यूक्रेन पर आक्रमण कर दिया, फलस्वरूप यूक्रेन में निवास करने वाले अन्य देशों के लोग अपने अपने देशों को लौटने लगे, जिनमें यूक्रेन में पढ़ने वाले भारतीय छात्र भी थे, फिर पता चला कि इन छात्रों में से सर्वाधिक छात्र 'मेडिकल शिक्षा' के लिए ही यूक्रेन गए हुए थे। इससे यह निश्चित बोध होता है कि एक सौ पैंतीस करोड़ की जनसंख्या वाले हमारे देश में "चिकित्सा शिक्षा" की स्थिति हम आजादी के पचहत्तर वर्षों में यथोचित नहीं कर पाए हैं। स्वास्थ्य मन्त्रालय के अनुसार हमारे देश में एमबीबीएस की कुल 88,120 सीटें हैं, जबकि बी.डी.एस. (दन्त चिकित्सक) की 27,498 सीटें हैं, जबकि चिकित्सा शिक्षा की प्रवेश परीक्षा नीट में सन् 2021 में 16 लाख छात्र बैठे थे, सन् 2020 में परीक्षा देने वालों की संख्या 13 लाख थी। सीटें कुल एक लाख पन्द्रह हजार, छ: सौ अठ्ठारह मात्र, इसके अलावा दुर्भाग्यपूर्ण यह भी है कि भारत में यदि सरकारी मेडिकल कॉलेजों में चयन न हुआ तो प्राइवेट मेडिकल कालेजों का शुल्क चार वर्ष के लिए 60-70 लाख रुपये देना पड़ता है, अन्य व्यय सहित जोड़ा जाय तो एक करोड़ के पास बैठता है, जबकि भारत के बाहर जो देश मेडिकल शिक्षा देते हैं जैसे- चीन, यूक्रेन, रूस, फिलीपीन्स, उज्बेकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान आदि वहां मात्र 15 से 17 लाख रूपये में इतनी ही शिक्षा मिल जाती है, इसके अतिरिक्त नेपाल एवं बांग्लदेश जैसे छोटे-छोटे देशों में भी भारतीय छात्र डाक्टर बनने के सपने लेकर जाते हैं। किन्तु दुर्भाग्य कि इन छात्रों को जब स्वदेश वापस आकर चिकित्सा करने की आवश्यकता होती है, तब जो शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... **''फॉरेन मेडिकल ग्रेजुएट्स एग्जामिनेशन''** परीक्षा होती है, तब मात्र 20 प्रतिशत छात्र ही उत्तीर्ण होते हैं, शेष लगभग 80 प्रतिशत डॉक्टर या तो पेशा बदल लेते हैं या बिना योग्यता पाए हमारे स्वास्थ्य के साथ खेलते हैं। जब यह पढ़ते हैं, तब देश का हजारों करोड़ रूपया बाहर जाता है, और जब पढ़कर लौटते हैं, तब उनमें से कुछ कृतघ्न अपनी अयोग्यता के होते हुए भी देश को गाली देने नहीं चूकते। आखिर हैं तो डॉक्टर। अब यूक्रेन में फंसे भारतीय छात्रों की स्थिति देखकर भारत सरकार का ध्यान ''मेडिकल शिक्षा'' की ओर गया है। क्या यह कम दुर्भाग्यपूर्ण है कि विश्वगुरु का दावा करने वाले हमारे देश के लाखों छात्र देश से बाहर पढ़ने में गौरवान्वित अनुभव करते हैं और जब स्वदेश लौटकर आते हैं- तब वे साथ लेकर आते हैं वहाँ की नास्तिकता, वहां की ईसाइयत, वहां की हिप्पोक्रेसी, वहां के कुसंस्कार। परिणामस्वरूप वे अपने देश की संस्कृति, सभ्यता, संस्कारों को अधिकांशत: हीन ही समझते और लोगों को भी यही समझाते रहते हैं। यूक्रेन-रूस युद्ध के इन दिनों भारत सरकार द्वारा देशवासियों के टैक्स के धन से नि:शुल्क लाए जा रहे इन डाक्टरों की जो प्रतिक्रियाएं समाचारों के माध्यम से देखी जा रही हैं, वे किसी भी दृष्टिकोण से इनके उच्च शिक्षित होने का प्रमाण तो नहीं ही दे रही हैं।

स्वास्थ्य जैसे विषय पर सरकारों को बहुत ही गम्भीरता से विचार कर समाधान करने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार की आवश्यकता है। आज भी हमारे देश में स्तरीय चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध नहीं है और यह केवल ऐलोपैथी की सुविधाएं विश्वस्तरीय नहीं है उसके कारण से नहीं अपितु हमारी अपनी आयुर्वैदिक सुविधाओं की स्थिति को देखकर ही कहा जा सकता है। देश के बालकों को विदेशों में पढ़ने के लिए न जाना पडे उसके लिए सरकार को न केवल चिकित्सा प्रशिक्षण के क्षेत्र को बढ़ाने की आवश्यकता है अपितु निजि मैडिकल कॉलेजों के द्वारा जो अत्यधिक फीस ली जाती है वह भी ठीक करने की आवश्यकता है। बहुत बड़ी संख्या में छात्र विदेशों में पलायन करते हैं। देश में स्थापित निजी मैडिकल कॉलेज अधिकांश राजनेताओं और अधिकारियों से सम्बन्धित होने के कारण मनमानी वसूली करते हैं जिसके कारण भी चिकित्सा सुविधाएं सुधर नहीं पाती हैं।

इसके साथ-साथ सरकार को वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति को बढ़ावा देना आवश्यक है। देश की बहुत बड़ी जन संख्या देशी पद्धतियों पर निर्भर है। इन सभी पद्धतियों, विशेषकर आयुर्वेद के क्षेत्र में बहुत बड़ी सम्भावनाएं हैं। अगर इस क्षेत्र को विकसित किया जाता है, अनुसंधान के लिए पर्याप्त साधन व सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाती हैं, तो आयुर्वेद के माध्यम से ही देश की अधिकांश जनता को एक स्वस्थ जीवन प्रदान किया जा सकता है। जिससे एलोपैथिक चिकित्सा की कम से कम आवश्यकता पड़ती है, चिकित्सा सेवाओं पर दबाव कम रह जाता है।

चिकित्सा क्षेत्र में सुधार के लिए सरकार के साथ लोगों को भी जीवन-शैली में प्रर्याप्त सुधार करने की आवश्यकता है जिससे एक स्वस्थ जीवन-शैली अपनाकर रोगों से बचा जा सके और चिकित्सा ढांचे पर पड़ रहे दबाव को कम किया जा सके। स्वस्थ जीवन-शैली अपनाकर रोगों को कम करके जहां एक तरफ लोगों के धन की बर्बादी को रोका जा सकता है वहीं स्वस्थ व्यक्ति की कार्य क्षमता भी बढ़ती है।

इसके लिए आवश्यक है देश में सांस्कृतिक जागरुकता की। आधुनिक युग के अन्धाधुन्ध भौतिक विकास के कारण जो समस्याएं संसार में फैली है उनसे बचने का उपाय भी वैदिक संस्कृति या जीवन शैली है, जो भौतिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास पर उतना ही बल देती है। बिना अध्यात्म के केवल भौतिक विकास समस्याएं ही पैदा करता है। शारीरिक सुख तो बढ़ जाता है लेकिन मानसिक शान्ति भंग हो जाती है, जो अनेकों रोगों को जन्म देती है। वर्तमान यही जीवन शैली जनित रोग ही सर्वाधिक व्यापक है विशेषकर देश के मध्य वर्ग में। अत: वैदिक परम्पराओं की स्थापना भी आवश्यक है- एक स्थायी व दीर्घ कालीन समाधान के लिए। इसी के लिए आर्य संगठन प्रयास कर रहे हैं। आइए इसी दिशा में आगे बढें।

-आचार्य हनुमत् प्रसाद उपाध्याय, अध्यक्ष, आर्य महासंघ

17 फरवरी-18 मार्च-2022 फाल्गुन ऋतु- वसन्त

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
				मघा कृष्ण प्रतिपदा 17 फरवरी	पू० फाल्गुनी कृष्ण द्वितीया 18 फरवरी	उ० फाल्गुनी कृष्ण तृतीया 19 फरवरी
हस्त कृष्ण चतुर्थी 20 फरवरी	चित्रा कृष्ण पंचमी 21 फरवरी	स्वाती कृष्ण षष्ठी 22 फरवरी	विशाखा कृष्ण सप्तमी 23 फरवरी	अनुराधा कृष्ण अष्टमी 24 फरवरी	ज्येष्ठा कृष्ण नवमी 25 फरवरी	मूल कृष्ण दशमी 26 फरवरी
पूर्वाषाढ़ा कृष्ण एकादशी/द्वादशी 27 फरवरी	उत्तराषाढ़ा/श्रवण कृष्ण त्रयोदशी 28 फरवरी	धनिष्ठा कृष्ण चतुर्दशी 1 मार्च	शतभिषा कृष्ण अमावस्या 2 मार्च	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल प्रतिपदा 3 मार्च	उत्तराभाद्रपदा शुक्ल द्वितीया 4 मार्च	रेवती शुक्ल तृतीया 5 मार्च
अश्विनी शुक्ल चतुर्थी 6 मार्च	भरणी शुक्ल पंचमी 7 मार्च	कृत्तिका शुक्ल षष्ठी 8 मार्च	कृत्तिका शुक्ल सप्तमी 9 मार्च	रोहिणी शुक्ल अष्टमी 10 मार्च	मृगशिरा शुक्ल नवमी 11 मार्च	आर्द्रा शुक्ल नवमी 12 मार्च
पुनर्वसु शुक्ल दशमी 13 मार्च	पुष्य शुक्ल एकादशी 14 मार्च	आश्लेषा शुक्ल द्वादशी 15 मार्च	मघा शुक्ल त्रयोदशी 16 मार्च	पू० फाल्गुनी शुक्ल चतुर्दशी 17 मार्च	उ० फाल्गुनी शुक्ल पूर्णिमा 18 मार्च	

19 मार्च-16 अप्रैल 2022 चैत्र ऋतु- वसन्त

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
 23 मार्च बलिदान दिवस		चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नवसंवत्सर प्रारम्भ आर्य समाज स्थापना दिवस 2 अप्रैल	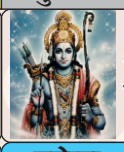	श्रीरामचन्द्र जयन्ती चैत्र शुक्ल नवमी 10 अप्रैल	हस्त कृष्ण प्रतिपदा 19 मार्च	चित्रा कृष्ण द्वितीया 20 मार्च
स्वाति कृष्ण तृतीया 21 मार्च	विशाखा कृष्ण चतुर्थी/पंचमी 22 मार्च	अनुराधा कृष्ण षष्ठी 23 मार्च	ज्येष्ठा कृष्ण सप्तमी 24 मार्च	मूल कृष्ण अष्टमी 25 मार्च	पूर्वाषाढ़ा कृष्ण नवमी 26 मार्च	उत्तराषाढ़ा कृष्ण दशमी 27 मार्च
श्रवण कृष्ण एकादशी 28 मार्च	धनिष्ठा कृष्ण द्वादशी 29 मार्च	शतभिषा कृष्ण त्रयोदशी 30 मार्च	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण चतुर्दशी 31 मार्च	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण अमावस्या 1 अप्रैल	रेवती शुक्ल प्रतिपदा 2 अप्रैल	अश्विनी शुक्ल द्वितीया 3 अप्रैल
भरणी शुक्ल तृतीया 4 अप्रैल	कृत्तिका शुक्ल चतुर्थी 5 अप्रैल	रोहिणी शुक्ल पंचमी 6 अप्रैल	मृगशिरा शुक्ल षष्ठी 7 अप्रैल	आर्द्रा शुक्ल सप्तमी 8 अप्रैल	पुनर्वसु शुक्ल अष्टमी 9 अप्रैल	पुष्य शुक्ल नवमी 10 अप्रैल
पुष्य शुक्ल दशमी 11 अप्रैल	आश्लेषा शुक्ल एकादशी 12 अप्रैल	मघा शुक्ल द्वादशी 13 अप्रैल	पू० फाल्गुनी शुक्ल त्रयोदशी 14 अप्रैल	उ० फाल्गुनी शुक्ल चतुर्दशी 15 अप्रैल	हस्त शुक्ल पूर्णिमा/प्रतिपदा 16 अप्रैल	

सहज सरल सांख्य-२०

- आचार्य सतीश, दिल्ली

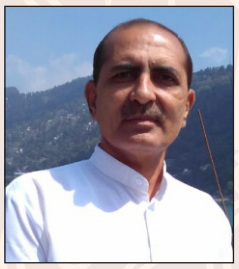

कहते हैं आत्मा अर्थात् जीव चेतनतत्व अद्वैत-एक है।

ऐसा कहना उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि लक्षण से आत्माओं के परस्पर भेद का ज्ञान होता है। न केवल ब्रह्मात्मा किन्तु जीवात्मा भी हैं। कोई दुखी है, कोई सुखी है, कोई जन्मता है, किसी का मरण है अत: आत्माएँ भिन्न-भिन्न हैं। जड़ जगत के साथ भी आत्मा का अद्वैत सम्भव नहीं क्योंकि जड़ पदार्थ का चेतन से भेद प्रत्यक्ष दिखता है।

लेकिन क्या दोनों मिलकर तो एक हो सकते है?

यह भी युक्तियुक्त नहीं, दोनों का अस्तित्व सर्वथा भिन्न रूप से उपलब्ध होता है। जड़ चेतन नहीं, चेतन जड़ नहीं, फिर दोनों का मिलकर एक बन जाना सम्भव नहीं।

लेकिन उपनिषदों में जो ऋषियों ने एकत्व का भाव प्रकट किया है उसका क्या?

आत्मा और अनात्मा के एकत्व का वर्णन वहां नहीं है और न हो सकता है। उपनिषदों में कहीं आत्मा की उत्कृष्टता दिखाने के लिए ऐसा कहा है, कहीं कार्यकारण की एकता के आधार पर, कहीं अभेद भावना से उपासना करने की दृष्टि से। केवल अविवेकी ही ऐसा देखते हैं उपनिषद से यह प्रत्याशित नहीं।

यदि कार्य कारण की दृष्टि से अभेद है तो आत्मा जगत का उपादान होना चाहिए?

आत्मा किसी भी रूप में जगत का उपादान नहीं क्योंकि चेतन होने के कारण वह अपरिणामी अर्थात् नि:संग है। यदि आत्माश्रित अविद्या को माना जाए तो वह भी सम्भव नहीं क्योंकि आश्रित के परिणाम से आश्रय की प्रभावित होगा। आश्रित न तो आश्रय को छोड़कर रह सकता है और न आश्रय अर्थात् आत्मापरिणामी हो सकती है। त्रिगुणात्मक मूल तत्व जो जड़ है, ही उपादान है। हाँ जड़ होने के कारण स्वत: प्रवृत्ति में असमर्थ हैं, चेतनतत्व उसका नियन्ता व अधिष्ठाता है। इसलिए आत्मा की उत्कृष्टता का प्रतिपादन वैदिक साहित्य में है, एकत्व या अद्वैत का नहीं।

तो क्या चेतन तत्व एक ही है?

नहीं, चेतन तत्व का दो रूपों में वर्णन है श्रुति में भी। एक परमात्मा जो शरीर बंधन में कभी नहीं आता और दूसरा जीवात्मा जो शरीर बन्धन में अवश्य आता है। और आनन्द स्वरूप नहीं है। वह केवल विद्रूप है अर्थात् चेतन है।

तो क्या मोक्ष में भी आत्मा आनन्द स्वरूप नहीं है?

मोक्ष अवस्था में सभी दुखों की निवृत्ति होने से उस अवस्था की विशेषता को प्रकट करने के लिए आनन्दी कहा गया है। परमात्मा की तरह स्वत: आनन्द स्वरूप शास्त्रोक्त नहीं है।

मुक्ति में भी आनन्द स्वरूप नहीं तो मुक्ति की इतनी प्रशंसा क्यों?

मूलत: तो मुक्ति में दुख निवृत्ति ही है। ऐसा ही विवेकीजन मानते हैं। या तो प्रशंसा अविवेकी जन करते हैं या उन्हें कल्याण मार्ग पर प्रशस्त करने के लिए की जाती है। आनन्द सुख, पुन: सुख दु:ख की अनुभूति मन से होती है, वह मुक्ति में है ही नहीं।

तो क्या मन व्यापक या विभु नहीं है?

कोई भी करण अर्थात् किसी वस्तु का साधन और इन्द्रिय सदा एकदेशी अर्थात् परिछिन्न हो सकते हैं। उनका व्यापक या विभु होना सम्भव नहीं है। यदि साधन अथवा इन्द्रिय को व्यापक माना जाए तो वह अपने कार्य अथवा विषय के साथ सम्बद्ध रहेगा और प्रतिक्षण उस कार्य का सम्पादन व विषय का ज्ञान होता रहना चाहिए, पर ऐसा होता नहीं और सम्भव भी नहीं, इसलिए करण व इन्द्रिय होने के कारण करण परिच्छिन है व्यापक नहीं।

मन गति विषयक श्रुति के आधार पर सक्रिय होने के कारण भी परिच्छिन है। मन नित्य भी नहीं है। जो वस्तु निरवयव है वह नित्य होती है। मन चूंकि सत्व, रजस्, तमस् रूप अनेक तत्वों से मिलकर बना है, परिणामी है, अत: अनित्य है।

कौन वस्तु नित्य और कौन अनित्य है?

समस्त जड़ जगत मूल प्रकृति का विकार है। मूल उपादान किसी का विकार नहीं हो सकता, यदि होगा तो वह मूल उपादान नहीं। चेतन तत्त्व स्वत: ही नित्य है। अत: मूल उपादान प्रकृति और चेतन पुरुष नित्य हैं। श्रुति भी इन्हें निरवयव कहती है यह हमेशा अपरिणामी तत्व है, जिसकी रचना नहीं होती वह अनित्य नहीं होता, नित्य ही होता है। प्रलयकाल में भी चेतनतत्व के साथ स्वधा अर्थात् मूल प्रकृति बिना किसी बाधा के अवस्थित रहती है इस प्रकार प्रकृति तथा पुरुष नित्य पदार्थ हैं, तथा इनके अतिरिक्त सब अनित्य हैं।

फिर मुक्ति का स्वरूप क्या है? क्या आत्मा आनन्द स्वरूप हो जाता है?

सांख्यकार कहता है कि ऐसा मानना युक्ति संगत नहीं है क्योंकि आत्मा चेतन स्वरूप है, उसमें किन्हीं धर्मो का समावेश नहीं रहता। चेतन होने के कारण उसे केवल अनुभूति होती है, मुक्ति में भी वह आनन्द स्वरूप नहीं हो जाता।

तो क्या आत्मा के किन्हीं विशेष गुणों का विच्छेद (छूट जाना) हो जाना मुक्ति है?

बद्ध अवस्था में आत्मा गुणों (इच्छा, राग, द्वेष आदि) के सम्पर्क में आता है जो त्रिगुण के परिणाम हैं। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप या चेतनस्वरूप है उसमें बाह्य गुणों या धर्मो का समावेश होना सम्भव नहीं है। अत: आत्मा के किन्हीं गुणों का उच्छेद होना भी सम्भव नहीं है अत: यह मुक्ति नहीं है।

क्रमश ....

संध्या काल

फाल्गुन-मास, वसन्त-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(17 फरवरी 2022 से 18 मार्च 2022)
प्रात: काल: 5 बजकर 45 मिनट से (5.45 A.M.)
सांय काल: 6 बजकर 45 मिनट से (6.45 P.M.)

चैत्र-मास, वसन्त-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(19 मार्च 2022 से 16 अप्रैल 2022)
प्रात: काल: 5 बजकर 30 मिनट से (5.30 A.M.)
सांय काल: 7 बजकर 00 मिनट से (6.00 P.M.)

आर्यों के १६ संस्कार

-आर्य राजेश, फरीदाबाद

जिस विधि से मनुष्यों के शरीर, मन और आत्मा उत्तम होते हैं उसे संस्कार कहते हैं। निषेक् अर्थात् गर्भाधान से लेके शमशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि जो मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं।

-संस्कारविधि

मनुष्य बिना सिखाए नहीं सीखता, उसे सिखाना पड़ता है। यदि मनुष्य के छोटे बच्चे को किसी ऐसे स्थान पर छोड़ दिया जाए जहाँ पर वह दूसरे मनुष्य के दर्शन भी न कर सके और न किसी मनुष्य का शब्द ही सुन सके तो वह कुछ भी न सीख पाएगा। हम देखते हैं कि अच्छे परिवार के बालक और अच्छे विद्यालय संस्थानों में शिक्षा प्राप्त बालक शिष्ट और सभ्य होते हैं और सभ्य-शिष्ट मनुष्यों से ही एक सभ्य और शिष्ट समाज बनता है। यह जो सदाचार, सद्व्यवहार आदि से बालकों को युक्त करना है, यही संस्कार है। निष्कर्ष यह कि मनुष्य में गुणों का आधान करना और अवगुणों का निवारण करना संस्कार है।

सनातन परम्परा में 16 संस्कारों का ऐसा उत्तम विधान है कि जिसमें मनुष्य जीवन की सफलता निहित है और मानव जाति के समग्र विकास और उन्नति का हेतु है। सर्वप्रथम एक उत्तम सन्तान प्राप्त करने के लिए अनुकूल वातावरण और भावी माता-पिता का स्वयं को तैयार करना जिसमें गर्भ का धारण अर्थात् वीर्य का स्थापना गर्भाशय में स्थिर करना होता है, वह गर्भाधान संस्कार हैं जैसे बीज और खेत उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं, वैसे उत्तम बलवान स्त्री-पुरुषों से उत्पन्न सन्तान भी उत्तम होते है।

गर्भ स्थापना हुए पश्चात् भी संस्कारों की प्रक्रिया चलती रहती है। गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्यए शरीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास और गर्भिणी स्त्री की प्रसन्नता और संतुष्टि के लिए दो संस्कार होते हैं- पुंसवन और सीमन्तोन्नयन।

सन्तान के जन्म-समय प्रसव का ठीक-ठीक कराना और नवजात शिशु का नालछेदन आदि पिता के द्वारा करना, प्रसूति गृह की स्वच्छता पवित्रता करना यह जातकर्म चतुर्थ संस्कार है।

इस संसार में मनुष्यों को एक नाम की महती आवश्यकता होती है तो इसके लिए बालक का नामकरण अर्थात् नाम रखा जाता है। बालक का हित-अहित विचार कर उसकी प्रसन्नता और सुशिक्षा को ध्यान में रखकर उसका पालन-पोषण करना, उसके लिए जब जैसी आवश्यकता हो तब वैसी व्यवस्था करना माता-पिता का कर्तव्य है। इन्हीं का पालन करते हुए बालक को प्रथम बार जहाँ का वायु-स्थान शुद्ध हो, जहाँ प्रसन्नता हो, वहाँ भ्रमण कराना निष्क्रमण संस्कार होता है।

जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य हो जाए या जब दाँत आने लगें तो उसे अन्न खिलाना आरम्भ किया जाता है, यह अन्नप्राशन संस्कार होता है। शिशु जब गर्भ में होता है तभी सिर पर बाल आ जाते हैं। इन मलिन बालों को उस्तरे से साफ करा देना मुण्डन अर्थात् चूडाकर्म संस्कार होता है। यह बालक के जन्म के एक वर्ष पश्चात् अथवा तीसरे वर्ष में किया जाता है। तीसरे वा पांचवें वर्ष में कर्णवेध संस्कार किया जाता है। इसका प्रयोजन बालकों की रक्षा से है। कान की नाड़ी बिन्धन से कतिपय रोगों का निराकरण हो जाता है।

मनुष्य के जीवन में विद्या अति महत्त्वपूर्ण है। विद्या से ही मनुष्य-मनुष्य बनता है, क्योंकि **'विद्या विहीनः पशुः।'** बालक को विद्या से युक्त करने के लिए आठवें से बारहवें वर्ष में (अर्थात् ब्राह्मण के पुत्र को आठवें, क्षत्रिय के पुत्र को ग्यारहवें और वैश्य के पुत्र को बारहवें वर्ष) आचार्य के पास लेकर जाना और आचार्य का उसे विधिपूर्वक अपने सानिध्य में लेना उपनयन संस्कार दसवाँ संस्कार है।

उपनयन के पश्चात् वेदारम्भ संस्कार होता है। वेदारम्भ उसको कहते हैं- जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग वेद विद्या, उत्तम शिक्षा और पदार्थ विज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त होके युवावस्था में समाज में साक्रिय भूमिका निभाकर एक उत्तम समाज बनने बनाने, वर्ण-आश्रम धर्म को ठीक प्रकार से निभाने और राष्ट्र निर्माण में रचनात्मक योगदान देने को तैयार होता है। इस प्रकार से विद्वान होकर विवाह-विधानपूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिए विद्यालय को छोड़के घर की ओर आना होता है। उसे समावर्तन संस्कार कहते हैं।

मनुष्य के जीवन में विवाह संस्कार बड़ा महत्वपूर्ण है। विवाह मानव समाज का आधार है, इसके द्वारा ही गृहस्थ आरम्भ होता है। और गृहस्थाश्रम ही सभी आश्रमों का आश्रय है विवाह संस्कार उसको कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा विद्या-बल को प्राप्त हो तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य, परस्पर प्रीतियुक्त होके सन्तानोत्पत्ति और अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिए स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है। यह तेरहवाँ संस्कार है।

विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से पुत्र भी विवाह करे और पुत्र का भी जब पुत्र हो जाए तब पुरुष गृहस्थ को छोड़कर वानप्रस्थ अर्थात् वन में जाकर ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य का पालन करे। यह वानप्रस्थ संस्कार है।

पन्द्रहवाँ संन्यास संस्कार- संन्यास उसको कहते हैं कि जो मोहादि आवरण, पक्षपात छोडके विरक्त होकर सब पृथ्वी पर परोपकारार्थ विचरे और सत्य उपदेश करे।

सोलहवाँ अन्त्येष्टि कर्म- अन्त्येष्टि कर्म उसको कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है। अर्थात् विधिपूर्वक मृतक शरीर का दाह-संस्कार करना। इसके आगे उस शरीर के लिए कोई भी अन्य संस्कार नहीं है। इसी को नरमेध, पुरुषमेध, नरयाग, पुरुषयाग भी कहते हैं।

इस प्रकार से इन सोलह संस्कारों द्वारा मनुष्यों के शरीर, मन और आत्मा को उत्तम बनाया जाता है और इस प्रकार के उत्तम मनुष्यों से एक उत्तम समाज और राष्ट्र बनता है। यदि मेरे आर्यावर्त्त के सभी स्त्री-पुरुषों के 16 संस्कारों होकर उत्तम बनें तो यह मेरा आर्यावर्त्त फिर से विश्वगुरु बन जाए। ओ३म् शन्तिः शन्तिः शन्तिः।

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-३१

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

वर्णाश्रम व्यवस्था ऋषियों एवं आर्य राजाओं के द्वारा स्वीकृत एक सर्वोत्तम व्यवस्था रही है। इसी व्यवस्था में रहकर हमारे पूर्वजों ने संसार भर में चक्रवर्ती राज्य स्थापित किये थे जिसमें प्रजा के सुखों का निष्पादन और सर्वविध उन्नति होती है। किन्तु दुर्भाग्य वश हमारी व्यवस्था के ढीला होने से आश्रम व्यवस्था बिगड़ गई और आश्रमों के बिगड़ने से वर्ण की महत्ता भी न्यून होकर नष्ट हो गई और समाज वर्ण शंकर होकर नष्ट भ्रष्ट हो गया। वर्ण कार्य विभाजन, विशेषज्ञता के द्वारा व्यक्ति व समाजिक कार्य क्षमताओं को कुशल बनाकर उनकी निरन्तर अभिवृद्धि करने वाली व्यवस्था है। यह व्यवस्था अपने विशुद्ध रूप में बडी उपयोगी व सार्थक है। उक्त महत्वपूर्ण व्यवस्था के लिए आश्रम व्यवस्था को पुन: स्थापित करना होगा। पूरी आश्रम व्यवस्था में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है **'गृहस्थ आश्रम'** इसी के बिगडने पर सब बिगाड होता है व इसी के सुधरने से सब सुधर जाता है। किन्तु आज तो समस्या यह है कि गृहस्थ को जीने वाले लोग वे चाहे स्त्रियाँ हो या पुरुष सभी इस गृहस्थ जीवन की महत्ता से परिचित नहीं है। उनके परस्पर साथ रहने का कारण या तो केवल शारीरिक वासना पूर्ती है अथवा समाज का भय या उत्पन्न हो चुकी सन्तानों को पालने की मजबूरी। वे गृहस्थ को पवित्र धार्मिक वा सामाकि कर्तव्य अथवा राष्ट्रीय जीवन की एक आधारभूत संरचना मानकर जीवन नहीं जी रहे होते हैं। उन्हें हर पीढ़ी में यह स्मरण कराने की आवश्यकता है। कि गृहस्थ महत्वपूर्ण है क्योंकि वानप्रस्थ, सन्यास और ब्रह्मचर्याश्रम को भी यही धारण करता है। यह दो प्रकार के पुरुषों के द्वारा धारण नहीं किया जाना चाहिए। एक दुर्बलेन्द्रिय और दूसरा निर्बुद्धि। यदि दुर्बल इन्द्रियों वाले लोग गृहस्थ में जायेंगे तो वे सफल गृहस्थ न हो सकेंगे और परिवार पर बोझ ही बन जायेंगे। निर्बुद्धि मनुष्य के हाथ में समाज और राष्ट्र को भविष्य का निर्माण नहीं सौंपा जा सकता। यहाँ यदि इसी दृष्टि कोण से विचार किया जाए तो गृहाश्रम की महत्ता व उसके कर्तव्याकर्तव्यों को न जानने वाला बुद्धिमान तो नहीं कहा जा सकता। जबकि यह शास्त्रीय प्रमाणों से भी सिद्ध है कि गृहाश्रम व्यवहार में सर्वोच्च है। क्योंकि -

यथा नदीनदासर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिण: सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

अर्थ- हे मनुष्यों! जैसे सब बडे-बडे नद और नदी सागर में जाकर स्थिर होते हैं, वैसे ही सभी आश्रमी गृहस्थ ही को प्राप्त होके स्थिर होते हैं। इन्हीं गृहाश्रमियों को कुछ कर्त्तव्य व सावधानियाँ कही गई हैं। जिन्हें गृहस्थों को कभी भी उपेक्षित नहीं करना चाहिए-

उपासते ये गृहस्था: परपाकमबुद्धय:।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम॥
आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यायुजानाम्।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीनं हीने समे समम्॥
पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥

अर्थ- यदि गृहस्थ होके पराये घर में भोजनादि की इच्छा करते हैं, तो वे बुद्धिहीन गृहस्थ अन्य से प्रतिग्रहरूप पाप करके जन्मान्तर में अन्नादि के दाताओं के पशु बनते हैं। क्योंकि अन्य से अन्नादि का ग्रहण करना अतिथियों का काम है, गृहस्थों का नहीं।

जब गृहस्थ के समीप अतिथि आवें, तब आसन, निवास, शय्या, पश्चात् गमन और समीप में बैठना आदि सत्कार जैसे का वैसा अर्थात् उत्तम का उत्तम मध्यम का मध्यम और निकृष्ट का निकृष्ट करे। ऐसा न हो कि इस नियम को कभी न समझें।

किन्तु जो पाखण्डी वेदनिन्दक नास्तिक ईश्वर वेद और धर्म को न मानें, अधर्माचरण करने हारे, हिंसक, शठ, मिथ्याभिमानी, कुतर्की और बकवृत्ति अर्थात् पराये पदार्थ हरने वा बहकाने में बगुले के समान अतिथिवेशधारी बनके आवें, उनका वचनमात्र से भी सत्कार गृहस्थ कभी न करे। उपरोक्त तीनों नियम और आगे भी जो कहे जायेंगे वे आज के समाज में उपेक्षा को प्राप्त हो चुके हैं जिसके कारण समाज को दुष्परिणाम भी भुगतने पड़ रहे हैं- यथा आज के समाज में निमन्त्रण (दावत) प्राप्त होने पर प्रसन्नता होना अत्यन्त सामान्य है परन्तु उस निमन्त्रण का औचित्य व अनौचित्य समझे बिना हम नई पुरानी परम्पराओं को ढो रहे हैं, कई एक विषयों में निमन्त्रण पर या उसके बिना भी भोजन करना उचित है, कई एक विषयों में निमन्त्रण पर या उसके बिना भी भोजन करना उचित है और कई विषयों/अवसरों पर अत्यन्त निन्दनीय व अनुचित ही है- जैसे किसी की पुत्री या पुत्र के विवाह में यदि आपका क्रियात्मक सहयोग उसे प्राप्त हो रहा है तो ऐसी दशा में उसके यहाँ भोजनादि करना उचित है भले ही वह सहयोग उनके विवाह के साक्षी बनने मात्र का ही क्यों न हो। किन्तु किसी परिवार में मृत्यु होने पर वहाँ पेट पूजा करना और यदि कोई निमन्त्रण न दे तो उसे ताने कसना भला कहाँ की सभ्यता हो सकती है। हम सब अपने भीतर भी विचार नहीं करते कि आखिर इस परिवार में भोजन प्राप्त करना औचित्य पूर्ण भी है या नहीं। भला मृतक के घर में भोजन का क्या औचित्य हो सकता है? जिन पेट पन्थियों ने यह प्रथा चलाई वे तो निन्दा के योग्य हैं ही, जो ऐसी परम्पराओं को अभी भी पोषित कर रहे हैं वे भी उनसे कम निन्दनीय नहीं हैं।

यदि आप घर के बाहर जाकर धर्म समाज या राष्ट्र के लिए प्रचार आदि उपकार के कृत्य कर रहे हैं अथवा आप सन्यासी, वानप्रस्थी हैं और समाज को विद्या का दान देकर, अविद्या का नाश करके, सत्य ज्ञान का प्रकाश करके उपकृत कर रहे हैं। यदि आप ब्रह्मचारी हैं और विद्याध्ययन के पश्चात् समाज व राष्ट्र को उपकृत करेंगे तब भी पर गृह में भोजन उचित है। इनके उलट परिस्थितियों में अनुचित ही कहना और मानना चाहिए। अत: गृहस्थों को दूसरों के भोजन में रूचि नहीं रखनी चाहिए। हमारा समाज ऋषि परम्पराओं में ऐसा ही रहा भी है। गांव में किसी की पुत्री का विवाह होने पर कैसे पूरा ग्राम उसके सहयोग में जुटता था, भोजन में दूध, खोआ, दाल चावल, शक्कर, अतिथियों के शयन के लिए खाट, बिस्तर कुछ भी खरीदना नहीं पड़ता था। कोई कर्मचारी भी किराये पर नहीं लाना होता था ग्रामवासी बडे ही प्रेमपूर्वक अतिथि सेवा करते थे। बहुएँ

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... वृद्धाओं के निर्देश में पकवान बनाती थीं और युवक वृद्धों के निर्देश में हाथ जोडकर लो जी-लो जी करके खिलाते थे बेटी पूरे ग्राम की बेटी हो जाती थी अतिथि पूर गांव के अतिथि और नातेदार हो जाते थे। इतना होने पर भी लड़की के विवाह में गांव वाले भोजन नहीं करते थे। आधुनिकता ने हमारा सब कुछ छीन लिया है।

साथ ही गृहस्थों के लिए भी नियम है कि जब उनके यहाँ अतिथि आवें तो उनका यथोचित् सत्कार करें, विद्वान, सदाचारी, संन्यासी आदि का श्रद्धा पूर्वक आसन जल भोजन पाथेय देकर व विद्या लेकर अवश्य ही सत्कार करना चाहिए क्योंकि पूज्य की अवमानना अनिष्ट फल देने वाली होती है। वैसे ही अपूज्य का सत्कार भी अत्पन्त अनिष्ट परिणाम ले आता है इसलिए ऋषि निर्देश प्राप्त हो रहा है कि पाखण्डी, वेदनिन्दक, नास्तिक आदि गुणों वाले जो ठग हैं, बगुला भगत हैं उनका सत्कार करना गृहस्थों के लिए कर्तव्य नहीं है अपितु उन्हें वाणी मात्र से नमस्ते कहने में भी हानि ही हानि है। किन्तु इन्हें पहचानाना अत्यन्त कठिन है- आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार नकली मुद्रा असली को चलन से बाहर कर देती है? अत: अत्यन्त सावधानी आवश्यक है। पाखण्डी अधिक धार्मिक दिखाई पड़ता है। उसके भीतर छिपे अधर्म को जानना सरल नहीं है वह एक कुशल शिकारी की भांति आपके सामने बहुत सरल व उदात्त बना रहता है और सब ओर जाल को फैला देता है। जब तक आपके हाथ-पाँव कस न जावें तब तक पता ही नहीं चलता। पता चलने तक वह आपको धन आदि से ठग चुका होता है और आप स्वयं की बदनामी वा उपहास से बचने को उसका विरोध भी नहीं कर पाते और कसमसाकर रह जाते हैं।

पुन विद्वानों ने इनको पहचानने के कुछ साधन अवश्यक निर्धारित किये हैं उन्हें जानकर सावधानी पूर्वक उपयोग करना चाहिए यथा उसके आसपास के वृद्ध लोगों ने उसको कैसा जाना है उसके संगियों का व्यवहार कैसा है? उसके परिवार के साथ वह कैसा सम्बन्ध रखता है? लोगों को प्रसन्न रखने के लिए उपहारादि देने के व्यवहार में अधिक विश्वास तो नहीं करता आदि ऐसे लोगों से दूर की नमस्ते करना ही उचित है अपितु ये सब गृहस्थों के द्वारा सम्मान के योग्य कदापि नहीं है।

तीर्थ

- आर्य अखिलेश, करनाल

तीर्थ:- विद्या का पढ़ना, अच्छे विचार, ईश्वर की उपासना, धर्म का अनुष्ठान, सत्संग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता आदि जो उत्तम कर्म हैं वे सब तीर्थ कहाते हैं क्योंकि इनको करके मनुष्य दु:ख सागर से तर जाते हैं अर्थात् दुखों से छूट जाते हैं।

तीर्थ किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है और जो जल स्थलमय हैं वे भी तीर्थ नहीं हो सकते क्योंकि **'जना मैस्तरान्ति तानि तीर्थानि'** अर्थात् मनुष्य जिस करके दुखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबोकर मारने वाले हैं। लेकिन नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे भी समुद्र आदि को तरते हैं।

जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणों में साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं।

विद्या का पढना- वेद विद्या तो अनिवार्य ही हो जिससे जीवन जीने की कला मिलती है, जीवन का उद्देश्य पता चलता है। जीवन के उद्देश्य की पूर्ति भी वेद विद्या प्राप्त किये बिना नहीं कर सकते हैं। इसके अलावा हमें जीवन यापन के लिये भी जो व्यवहारिक शिक्षा है वह भी प्राप्त करनी चाहिये। क्योंकि जीविका चलाने के लिये धन की भी आवश्यकता होती है और धन की दान करके पुण्य भी कमा सकते हैं। अत: विद्या का पढ़ना और पढ़ाना पुण्य का कार्य है और प्रण्य करने से स्वयं को व औरों को सुख ही मिलता है। अत: विद्या का पढना भी तीर्थ ही है।

अच्छे विचार- मनुष्य को अपने अन्दर अच्छे विचार ही लाने चाहियें क्योंकि जब विचार अच्छे होंगे तो कर्म भी उत्तम होंगे, जैसे दूसरों की सहायता करना अपने बुजुर्गों, माता-पिता, सन्त-महात्माओं की सेवा करना। जब इस प्रकार कर्म करेगा तो दुखों से दूर रहेगा अर्थात् अच्छे विचार से ओत-प्रोत होना भी तीर्थ कहाता है।

ईश्वर की उपासना- जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक और अपने को व्यापक जानके ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा योगाभ्यास से साक्षात् करेंगे तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करके दु:खों से तर जायेंगे तो समझो तीर्थ कर लिया।

धर्म का अनुष्ठान- धर्म अर्थात् जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत पालन करना और पक्षपात रहित न्याय और सत्य भाषण करना धर्म है। सत्य भाषण अर्थात् जितना हमें ज्ञान है उसके अनुसार ही बोलना सत्य भाषण कहलाता है और जब मनुष्य सत्य ही बोलेगा तो पक्षपात रहित ही कार्य करेगा अत: धर्म का अनुष्ठान ही करेगा और तीर्थ कर लेगा।

सत्संग- सत्संग अर्थात् जिस करके झूठ से छूटकर सत्य का ही प्राप्ति होती है उसे सत्संग अर्थात् सत्य का संग कहते हैं। जब मनुष्य सत्य ही को अपनायेगा तो दुखों से दूर ही रहेगा। और तीर्थ कर लेगा।

जितेन्द्रियता- जितेन्द्रियता अर्थात् इन्द्रियों को वश में कर लेना। जैसे किसी बीमार व्यक्ति को पता है कि अमुक बीमारी में अमुक वस्तु खानी नुकसान दायक है तो उसको न खाना इन्द्रियों को वश में करना माना जाता है। जब कोई जितेन्द्रिय होगा तो समझो तीर्थ कर लिया। इस प्रकार तीर्थ को ठीक-ठीक समझकर हम अपनी और अन्यों की उन्नति कर सकते हैं।

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट- **www.aryanirmatrisabha.com** पर उपलब्ध है। अत: आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अत: पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक- **www.aryanirmatrisabha.com/**हिन्दी में पत्रिका पर जाएं।

आर्योद्देश्यरत्नमाला

प्रणेता - ऋषि दयानन्द
व्याख्याता - आचार्य परमदेव मीमांसक

५. आत्मा की शुद्धि-जो-जो अपना आत्मा अपने लिये चाहे, वह सब के लिये चाहना और जो न चाहे वह-वह किसी के लिये न चाहना। इन भावनाओं से क्या दूसरों के लिये ग्राह्य वा त्याज्य है निर्णय करना चाहिये; अपनी अनुकूलता वा प्रतिकूलता का ज्ञान ठीक-ठीक बिना विद्या के नहीं हो सकता है, इसलिये विद्या के नेत्र से अनुकूल वा प्रतिकूल समझ कर दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार होना चाहिये। मन, वाणी और कर्म में एकरूपता रखते हुए स्वात्मवत् भावना के साथ शुद्ध-पवित्र होकर विद्या के नेत्र से अनुकूल वा प्रतिकूल का विचार करके सत्य और असत्य का निर्णय करना और कराना चाहिये ।।

८३. आठ प्रमाण-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव ये **'आठ प्रमाण'** हैं। इन्हीं से सब सत्याऽसत्य का यथावत् निश्चय मनुष्य कर सकता है।

८४. लक्षण-जिससे लक्ष्य जाना जाय जो कि उसका स्वाभाविक गुण है। जैसे कि रूप से अग्नि जाना जाता है, इसलिये उसको **'लक्षण'** कहते हैं।

व्याख्या-जिस से लक्ष्य जाना जाय, वह लक्षण कहलाता है। जैसे रूप से अग्नि जाना जाता है, रूप अग्नि का स्वाभाविक गुण है, यदि कहीं पर आँखों से रूप जाना जाता है तो वहाँ अग्नितत्त्व है यही निश्चय होता है। स्वाभाविक और कृत्रिम गुण दोनों से लक्ष्य जाना जाता है; परन्तु कृत्रिम गुण तो निमित्त के हटने से हट जाता है; अतः स्वाभाविक गुण से ही ठीक-ठीक लक्ष्य जाना जा सकता है। इसलिये इस को **लक्षण** कहते हैं।।

८५. प्रमेय-जो प्रमाणों से जाना जाता है जैसा कि आँख का प्रमेय रूप अर्थ है। जो कि इन्द्रियों से प्रतीत होता है, उसको **'प्रमेय'** कहते हैं।

व्याख्या-प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जो जाना जाता है अर्थात् ज्ञेय है, वही **'प्रमेय'** होता है। जैसे आँख का प्रमेय रूप, नासिका का प्रमेय गन्ध इत्यादि है।

८६. प्रत्यक्ष-जो प्रत्यक्ष शब्दादि पदार्थों के साथ श्रोत्रादि इन्द्रिय और मन के निकट सम्बन्ध से ज्ञान होता है, उसको **'प्रत्यक्ष'** कहते हैं।

व्याख्या-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुणों का श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध होता है, तब इन इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको **'प्रत्यक्ष'** कहते हैं।

८७. अनुमान-किसी पूर्व दृष्ट पदार्थ के एक अंग को प्रत्यक्ष देख के पश्चात् उसके अदृष्ट अंगी का जिससे यथावत् ज्ञान होता है, उसको **'अनुमान'** कहते हैं।

व्याख्या-किसी वस्तु का प्रथम प्रत्यक्ष किया हो, उसके गुणों को जाना हो; अब सम्पूर्ण वस्तु तो दिखाई नहीं पड़ती है। उसका एक अंग, कोई गुण, किसी नित्य सहचारी वस्तु के दिखाई पड़ने मात्र से उस वस्तु का ज्ञान होना अनुमान कहाता है। जैसे-रसोईघर में अग्नि और धूएँ को साथ-साथ देखा था, अब दूर स्थान में केवल धूआं दिखाई पड़ रहा है, तो बोध होता है कि वहाँ अग्नि भी होगी, प्रत्यक्ष सहचारी धूम के देखने से अदृष्ट सहचारी अग्नि का ज्ञान होना ही **अनुमान** है।

८८. उपमान-जैसे किसी ने किसी से कहा कि गाय के समतुल्य नील गाय होती है, जो कि सादृश्य उपमा से ज्ञान होता है, उस को **'उपमान'** कहते हैं।

व्याख्या-पूर्व प्रत्यक्ष की हुई वस्तु से, जो वस्तु अभी नहीं देखी है, पूर्व प्रत्यक्ष वस्तु से सादृश्यता (उपमा) को दिखलाकर अप्रत्यक्ष वस्तु का बोध कराना उपमान कहाता है। जैसे-किसी ने गाय देखी है, नील गाय नहीं देखी है तो गाय के सदृश ही नील गाय होती है ऐसा बतला देने पर वह गाय के जैसे ही (कुछ भिन्नता रहने पर भी) पशु को देखकर नील गाय का ज्ञान कर लेगा, यही उपमान है।

८९. शब्द-जो पूर्ण आप्त परमेश्वर और पूर्वोक्त आप्त मनुष्य का उपदेश है, उसी को **'शब्द-प्रमाण'** कहते हैं।

व्याख्या-मनुष्य अल्पज्ञ है, परमात्मा सर्वज्ञ है अतः परमेश्वर पूर्ण आप्त है, पूर्ण आप्त परमेश्वर का उपदेश जो वेद है वह स्वतः प्रमाण है; जो आप्त मनुष्यों का वेद अविरुद्ध उपदेश और ग्रन्थादि हैं, उसको भी **शब्द-प्रमाण** कहते हैं।

९०. ऐतिह्य-जो शब्द प्रमाण के अनुकूल हो, जो कि असम्भव और झूठा लेख न हो, उसी को इतिहास कहते हैं।

व्याख्या-भूतकालस्थ पुरुषों का जीवनचरित्र, सृष्टि पदार्थों के निर्माण आदि की कथा ऐतिह्य कहलाती है परन्तु वह किसी आप्त के द्वारा कहा गया हो, असम्भव, सृष्टिक्रम के विरुद्ध और असत्य न हो।

९१. अर्थापत्ति-जो एक बात के कहने से दूसरी बात बिना कहे समझी जाय, उस को **'अर्थापत्ति'** कहते हैं।

व्याख्या-कारण एवं कार्य भाव को परस्पर विचार करते हुए एक के होने पर दूसरे को जान लेना अर्थापत्ति होती है। जैसे-देवदत्त मोटा और स्वस्थ है परन्तु दिन में भोजन नहीं करता है, इससे क्या जाना गया कि अवश्य रात्रि में करता होगा क्योंकि बिना भोजन किये स्थूलता नहीं होती है, कारण तो भोजन है कार्य है स्थूलता, यदि कार्य है तो कारण अवश्य होगा, अतः देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता है अर्थात् रात्रि में करता है, यही परिज्ञान अर्थापत्ति है।

९२. सम्भव-जो बात प्रमाण, युक्ति और सृष्टिक्रम से युक्त हो, वह **'सम्भव'** कहाता है।

व्याख्या-जो बात प्रत्यक्षादि प्रमाण से युक्त हो, तर्क से युक्त हो और सृष्टि के स्वाभाविक नियमों से युक्त हो; वह **'सम्भव'** कहलाता है। जैसे-अगस्त्य ने समुद्र पी लिया, पार्थिव गणेश ने दूध पिया इत्यादि बातें प्रत्यक्षादि प्रमाण, तर्क, सृष्टिक्रम (दूध की आकांक्षा का जड़ में अभावरूप आदि विरुद्धता) से विरुद्ध होने से **'सम्भव'** नहीं है।

९३. अभाव-जैसे किसी ने किसी से कहा कि तू जल ले आ, उसने वहाँ देखा कि यहाँ जल नहीं है परन्तु जहाँ जल है वहाँ से ले आना चाहिये। इस अभाव निमित्त से जो ज्ञान होता है; उस को **'अभाव प्रमाण'** कहते हैं।

क्रमश ....

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

इस सत्र में मैंने अपने देशकाल, पूरे देश का परिचय सन्ध्या तथा शारीरिक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त हुआ। वास्तव में जीवन एवं राष्ट्र उन्नति के लिए धर्म की बारीकी से चर्चा हुई।

इस सत्र से मैंने जाना आर्य क्या है? और आर्य के कर्तव्य क्या हैं? प्रवक्ता तथा भजन वक्ता एवं खान-पान एवं व्यवस्था की बारम्बार बधाई।

आर्य निर्मात्री सभा के इस प्रयास के लिए पूर्ण सार्थक।

नाम : महेशपाल सिंह आर्य, आयु : ६९ वर्ष, योग्यता : एम.ए, बी.एड, कार्य : प्रधानाचार्य, पता : देवपुरम, लक्ष्मीनगर।

मुझे मेरे पूवजों का ज्ञान मिला और राष्ट्र के प्रति जागरूक होने का अनुभव मिला तथा देश के लिये एक जुटता करने या होने की शिक्षा मिली। मुझे दो दिन का सत्र अनुभव अच्छा लगा और आगे भी ऐसी प्रेरणा व सत्र में शामिल होने के जागरूक रहूँगा। ओम् नमस्ते जी!

मैं सदा राष्ट्र निर्माण में सहयोग करता रहूंगा तथा वेदों का ज्ञान प्राप्त करता रहूंगा तथा इससे लोगों को भी जागरूक करने का कार्य करुँगा।

नाम : अशोक कुमार, आयु : ४५ वर्ष, योग्यता : १० वीं, कार्य : व्यवसाय, पता : गांधी नगर, मुजफ्फरनगर, उ.प्र.

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	02 मार्च	दिन-गुरुवार	मास-फाल्गुन	ऋतु-वसन्त	नक्षत्र-शतभिषा
पूर्णिमा	18 मार्च	दिन-शनिवार	मास-फाल्गुन	ऋतु-वसन्त	नक्षत्र-उ.फाल्गुनी
अमावस्या	01 अप्रैल	दिन-शुक्रवार	मास-चैत्र	ऋतु-वसन्त	नक्षत्र-उत्तराभाद्रपदा
पूर्णिमा	16 अप्रैल	दिन-शनिवार	मास-चैत्र	ऋतु-वसन्त	नक्षत्र-हस्त

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।